|| श्री हरि: ||

साधनदीपिका ग्रन्थमें फलका निरूपण

योगेश गोस्वामी

मंगलाचरण

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगोभवेत् ।
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद् वल्लभनन्दनम् ।।
श्रीवल्लभ प्रतिनिधिं तेजोराशिं दयार्णवम् ।
गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथम् आश्रये ।।

चतुर्विध पुरुषार्थोकी भक्त्यात्मकता एवं फलरूपता :

दु:खका अभाव एवं सुखकी प्राप्ति यही दो साक्षाद् पुरुषार्थ माने गये है,दु:खका अभाव यानि 'मोक्ष'ओर सुखकी प्राप्ति यानि 'काम' इन दो पुरुषार्थ (काम एवं मोक्ष) के अंग 'अर्थ'से सिद्ध हुआ 'धर्म' है एसा निश्चय होता है (स.नि १७) इस तरह इन दो साक्षात् पुरुषार्थोका (काम-मोक्ष पुरुषार्थका) फलके रूपमें निरूपण हुआ है चतुर्विध पुरुषार्थमें प्रथम साधन (अंग) 'अर्थ' है 'अर्थ' से द्वितीय अंग 'धर्म' सिद्ध होता है ओर धर्मसे सुख अर्थात् काम एवं दु:खाभाव अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है.ज्ञान का भी धर्म पुरुषार्थ में ही समावेश किया गया है.

इस तरह फलको दो रूपमें मान्य किया गया है .एक दु:खाभाव रूप और दूसरा सुखकी प्राप्ति रूप. आनंदकी प्राप्तिमें इन दोनोंका समावेश हो जाता है श्रीआचार्यचरण सुबोधिनीजीमें आज्ञा करते हैं कि जीवकी प्रवृत्ति आनंद प्राप्तिके लिये ही होती है.यह आनंद भगवानमें ही है, अन्य कहीं नहीं. जीवमें ही जब आनंद तिरोहित है तो फिर जड़ वस्तुमें तो आनंद की गन्ध भी नहीं है. इतना होनेपर भी जैसे मरु-मरिचिकाकी तरह अत्यन्त जल रहित भूमिमे भ्रान्तको जलकी प्रतीति होती है उसीतरह माला चन्दन इत्यादि लौकिक विषयोंमे भी आनंद है एसे लोगोको भ्रम होता है. जो वस्तुके स्वयंके पास है उसीको वह दे पाती है जो नहीं है उसे नहीं दे पाती. इसीलिये ज्ञानी इस बातको समझकर आनंदके निधि भगवानके ही चरणकी सेवा करते हैं. वेदमे कहे अनुसार भगवानके चरणारविन्दके अतिरिक्त अन्य कहीं आनन्द नहीं है. जीव गुप्त आनन्द वाले है, जगत आनन्द रहित है ओर हरि पूर्ण आनन्द वाले है इसलिये सुखकी ईच्छावाले जीवोंको हरिकी सेवाही करनी चाहिये.(सुबो.१०-८४-२०) इसलिये पुष्टिप्रवाहमर्यादा ग्रन्थमे श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते है कि पुष्टिमार्गीय जीवोंका फल एकमात्र स्वयं भगवान ही हैं.जिन जिन भक्तोंके लिये गुण ओर स्वरूपके भेद अनुसार जेसे जेसे निजरूप धारणकर भगवान प्रकट होते हैं वैसे वैसे भगवद्रूपोंके साथ पुष्टिसृष्टिके जीवोंको फल प्राप्तिका अनुभव होता है.

श्रीमहाप्रभुजी वृत्रासुर चतु:श्लोकी विवृत्तिमे पुष्टिमार्गके चतुर्विध पुरुषार्थोको समझानेके लिये कारिकामे आज्ञा करते है;

पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं धर्मो अर्थो हरि रेव हि ।
कामो हरिदिदृक्षैव मोक्षो कृष्णस्य चेद ध्रुवम् ।।

अर्थ: श्री हरिका दास होनाही पुष्टिमार्गीय धर्म है ओर दासका धर्म है कृष्णसेवा. पुष्टिभक्तोंका अर्थ स्वयं श्रीहरि ही हैं. श्रीहरिके दर्शनकी कामना ही (सर्व इन्द्रियोंसे हरिकी कामना) पुष्टिमार्गीय काम (ईच्छा) है तथा सर्वात्मकभावसे श्रीकृष्णकाही बनजाना यही पुष्टिभक्तोंका मोक्ष है.अर्थात् पुष्टिमार्गके धर्मादि चतुर्विध पुरूषार्थ भक्तिपुरुषार्थके ही अंग बन जानेके कारण वे सभी भक्त्यात्मकही हैं. फलप्राप्ति हो जानेपर मर्यादामार्गकी तरह धर्म एवं अर्थ को छोडना नहीं है, क्योंकि पुष्टिभक्तिमार्गमें धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थ भक्तिके ही अंग बन जानेके कारण भक्तिकी तरह वेभी स्वयं फलरुप हो जाते हैं.

प्रमाण–प्रमेय–साधन–फलकी एकरूपता होनेसे उनकी फलरूपता :

वेदके पूर्वकाण्डके प्रतिपाद्य क्रियारूप तथा उत्तरकांडके प्रतिपाद्य ज्ञानरूप एसे उभयविध शक्तिसे विशिष्ट जो प्रमेयरूप वेदार्थ कृष्ण है वे ही भक्तिमार्गमे फल है. इस फलकी प्राप्तिका साधन प्रेम है.उस प्रेमको प्रकट करने का साधन नवधाभक्ति है.इस प्रेमरूपा भक्तिका प्रतिपादन गीता(प्रमाण) ने किया है. इस गीताके संक्षेपके वक्ता भी अन्य कोई नहीं किन्तु स्वयं फलरूपी श्रीहरि है.गीताके अभिप्रायको समझनेमे यदि कुछ संदेह होता हो तो उन सभीका निर्णय विस्तारसे भागवत से प्राप्त होता है. स्वयं भगवान श्रीकृष्णने ही वेदव्यासजीका रूप धारणकर श्रीमद्भागवत् महापुराणमे आज्ञा की है (स.नि.२२०–२२१). जिस भक्तिमार्गमे सन्मार्गसे विचलित या भ्रष्ट होनेका तनिक भी भय नही है.एसा यह मार्ग सभी मार्गोमे उत्तम कहा गया है.क्योंकि यह मार्ग जीवको संसारसे सर्वथा छुडानेवाला है क्योंकि इस मार्गमे प्रमाण (गीता–भागवत), प्रमेय (स्वयं श्रीहरि), साधन (श्रीहरिका धर्मरूप प्रेम) एवं फल (स्वयं श्रीहरि) ये चारो एकरूप है.गीता भागवतमे कहे हुए भगवानके प्रमाण वाक्यमे विश्वास रखकर प्रवृत्त हुए भक्तके द्वारा यदि कदाचित् कुछ बाधक आजाने के कारण साधन ठीक तरह न भी बन सके तोभी परम दयालु भगवान प्रमेय बलसे भक्तको कृतार्थ ही करते है. भक्तिमार्गमें प्रमेय (जानने योग्य तत्त्व) भगवान है और फलभी भगवान है.इसीकारण प्रमेयका ज्ञान होना ही फलका अनुभव करना है. साधन भक्ति है वह फलसे भी अधिक है. इसीलिये भक्त फलरूप भगवानमें लीन होना नही चाहता किन्तु सर्वदा भक्तिही करना चाहता है (स.नि.२२२). अत: भक्तिमार्गमे धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थ एवं प्रमाण–प्रमेय–साधन–फल चतुष्टय इन सभीको फलरूप माना गया हे.

अत: यहां साधनदीपिकाग्रन्थमें जहां जहां भी इन धर्मादि पुरूषार्थोका एवं प्रमाणादि चतुष्टयका निरूपण हुआ है वहां उनकी फलरूपता ज्ञात होती है.

साधनदीपिका ग्रन्थका सूक्ष्म परिचय :

श्रीमहाप्रभुजीने अपने सर्वनिर्णयान्तर्गत साधन प्रकरणमे यह आज्ञा की है कि जिस व्यक्ति पर हरि कृपा नहि है उसे इस भक्तिमार्गमे किसीभी प्रकारकी सिध्दि नही होती है.किन्तु जिसपर भगवानकी कृपा है उसे इस मार्गमे फलकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है उसके लिये यहां (साधनप्रकरणमे) साधनका निरूपण किया जा रहा है. (स.नि.२२६) अर्थात् कृपा जब भगवानके तरफसे जीवपर होती है तब ही जीव साधनपर अग्रसर होकर भगवानकी तरफ प्रयाण कर पाता है. यहां कृपा ही साधन है. इसी अर्थमे यहां साधनदीपिका ग्रन्थमे भी 'साधन' का अर्थ समझना है. महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथ प्रभुचरणके द्वारा रचित यह साधनदीपिका ग्रन्थ, पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंको भगवदीय जीवन जीने के लिये एक श्रेष्ठ मार्गदर्शन करानेवाली कृति है. भक्तिमार्गीय साधना प्रणालीका विवेचन आपश्रीने इस ग्रन्थमे किया है. शरणागति, समर्पण, भक्ति, सेवा, तीर्थाटन, स्मरण, नित्य दिनचर्या एवं सेवा प्रणाली इत्यादिका विस्तृत मार्गदर्शन हुआ है. अर्थात् 'साधनदीपिका' इस शिर्षकका अर्थ हुआ भगवान श्रीकृष्णकी कृपा से जीवको प्राप्त भक्तिमार्गीय साधनको प्रकाशित करनेवाली दीपिका. पुष्टिभक्तिमार्गमें साधनही फल है क्योंकि भक्त फलरूप भगवानमें लीन होना नहीं चाहता बल्कि उनका भजनही करना चाहता है.

ग्रन्थमे निरूपित मंगलाचरणमे फलका निरूपण:

ता नः श्रीतात-पत् पद्मरेणवः कामधेनवः।
नाकस्य तरवोऽन्येषां स्युः कल्पतरवो यथा ।। १ ।।

इस मंगलाचरणमे श्रीमहाप्रभुजीके चरणकमलकी रजको कल्पतरू एवं कामधेनुके समान बताया है. जेसे लोकमे कल्पतरू एवं कामधेनु समस्त ईच्छापूर्ति करनेमें समर्थ होनेसे फलरूप है, उसी प्रकार अलौकिक भक्तिमार्गमे भजनानन्द एवं स्वरूपानन्द रूप फलकी कामना की पूर्ति श्रीमहाप्रभुजीकी चरणरज द्वारा ही हो जाती है. इस अर्थमे पुष्टिमार्गीय के लिये तो स्वयं श्रीआचार्यचरण ही फल है. अन्य किसी भी लौकिक वैदिक साधन से भक्तकी अलौकिक इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती है.

श्रुति-स्मृति शिरोरत्न नीराजित पदाम्बुजम्।
यशोदोत्संगललितं वन्दे श्रीनन्दनन्दनम्।।

इस मंगलाचरणमे श्रीबालकृष्ण प्रभुको निःसाधनजनोंके फलात्मक प्रभु बतलाये है. श्रुति-स्मृति में प्रभुकी महिमा गायी है एवं प्रभुकी प्राप्तिके मार्ग दिखलाये है किन्तु साथ साथ यह भी कहा है कि इस परमात्मा की प्राप्ति किसी भी साधनसे नही होती है. यह तो जिस जीवका वरण करता है उसीको प्राप्त होता है. अर्थात् परमात्माकी प्राप्तिका साधन केवल कृपा ही है. इस मंगलाचरणसे यह सूचित हो रहा है कि जो परमात्मा हजारों सालकी तपस्याके बाद ऋषि-मुनियोंको प्राप्त नहीं होता है वही परमात्मा श्रीबालकृष्ण स्वरूपमे श्रीयशोदाजी-श्री नन्दरायजी के पुत्र बनकर उनकी

गोदमें खेल रहे है एवं स्वरूपानंदका दान कर रहे है. इसीलिये श्रीआचार्यचरणने आज्ञा की है कि, ''नि:साधन फलात्माऽयं प्रादुर्भुतोस्ति गोकुले'' नि:साधन भक्तोंके फल स्वरूप यह श्रीबालकृष्ण प्रभु है.

प्रमाण स्वरूप श्रीमद् आचार्यचरणकी वाणी ही फलरूप :

इस ग्रन्थमें उपदिष्ट सिद्धान्तमे प्रमाण वेदादि शास्त्रों की श्रीमद्आचार्यचरण द्वारा प्रकट की हुई व्याख्या है .

भक्तिमार्ग वितानाय योऽवतीर्णो हुताशन: ।
स एव न: परं मानं शेषमस्य प्रमान्तरम् ।।

अर्थ : भक्तिमार्ग के प्रचार के लिये वैश्वानर श्रीवल्लभाचार्यचरण ने भूतल पर अवतार धारण किया इस कारण उनके वचन ही हम सभी के लिये परम प्रमाणरूप है. अन्य सभी प्रमाण आपश्री के वचनों के अंगभूत है. कृष्णाश्रय ग्रन्थमें आप आज्ञा करते है कि यह कृष्णाश्रय स्तोत्र श्रीकृष्णकी सन्निधिमे जो पढ़ेगा उसके श्रीकृष्ण आश्रयरूप होंगे एसा श्रीवल्लभ का कहना है. श्रीमहाप्रभुजी के द्वारा कहे गये स्तोत्रके केवल पाठ मात्रसे एसा उत्तम फल कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसके उत्तरमें यही समाधान मिलता है कि जब नलकुबेर तथा मणिग्रीव नारदजीके शापसे यमलार्जुन वृक्ष हुए , तब इस शापसे उन्हे मुक्ति भगवान श्रीकृष्ण अपने अवतारकालमें करायेंगे एसा श्रीनारदजीने कहा. इस नारदजी की उक्तिको सिद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णने उखलबन्धन लीलाके द्वारा उनका उद्धार किया. ठीक उसी तरह दैवी जीवोंके उद्धारार्थ प्रकट हुए श्रीकृष्णके मुखारविन्द स्वरूप श्रीआचार्यजीके वाक्य पर विश्वास रखकर यदि कोई जीव इस मार्गमें प्रवृत्त होगा तो, प्रभु उस जीव पर निश्चय ही अनुग्रह कर फल दान करेंगे ही. इसरूपमें श्रीमहाप्रभुजीकी वाणी स्वयं फलरूप है.

श्रीहरिभजनकी आवश्यकताके उपपादनके साथ ग्रन्थके उपक्रममें फलका निरूपण :

'' आत्मा वार..........आराधने मुक्ति:'' (श्लोक ५-७) इन श्लोकों में श्रीगोपीनाथप्रभुचरणने हरिभजनकी आवश्यकता समझाते हुए मुख्य फल का निर्देश किया है कि हरिके भजनसेही जीवको भगवान का साक्षात्कार एवं भजनानंदरूप रसानुभव होता है. अहन्ता-ममतात्मक संसारदु:खकी निवृत्ति एवं प्रभुके माहात्म्यज्ञानके कारण भय और भवबन्धन से मुक्ति का हरि भजन के अवान्तर फलरूपमें निर्देश किया है. श्लोक ८ में भगवानका माहात्म्यज्ञानपूर्वक उनमें सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह कोही हरिभक्ति का फल लक्षण बताया है, इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे मुक्ति नहीं होती है. इसी बात के लिए श्रीआचार्यचरण भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें (६-७) आज्ञा कर रहे हैं कि सुदृढ़ भाववाले व्यसनावस्था प्राप्त जीवको भी भगवदीयके सङ्ग बिना घरमें स्थिति भावका नाश करनेवाली है, अत: एसे जीवको घरका त्यागकर, प्रभु मिलन की अभिलाषासे एक भगवानमें मन रखकर, भगवद्-भाव बढ़ानेका यत्न करना चाहिये. इससे इस जीवको सुदृढ़

सर्वतोधिक (मुक्ति आदि से भी अधिक) एसी श्रेष्ठ (पूर्णानंद पुरूषोत्तम में जिसका सम्बन्ध है एसी) भक्तिकी प्राप्ति होती है.

गुरु की आवश्यकता एवं गुरू के फलमुख लक्षण का निरूपण:

श्लोक ८ में निर्दिष्ट फलरूप भक्ति को सिद्ध करनेके लिए प्रभुके माहात्म्यज्ञानको निमित्तकारण बताया है. प्रभुके दिव्य गुण-चरित्र का श्रवण करनेसे माहात्म्यज्ञानकी प्राप्ति होती है. प्रभुके दिव्य गुण-चरित्रका वर्णन शास्त्रमे हुआ है. शास्त्राध्ययन गुरु बिना संभव न होने से, जिज्ञासु शिष्यको आदरपूर्वक गुरूके शरणमें जाना चाहिये (श्लोक ९) . अत: श्लोक १०मे पुष्टिमार्गोपदेष्टा गुरुकी फलमुखयोग्यताका लक्षण बताया है कि श्रीकृष्णकी सेवामे तत्पर होना ,दम्भादि रहित होना और श्रीभागवतके भक्तिमार्गीय गूढ़ रहस्योंका ज्ञाता होना. एसे नरकी परीक्षा करके आदर पूर्वक शिष्य भजन करें एसा इस श्लोकमे समझाया है. श्रीमद्वल्लभवंशजमें भी फलमुख योग्यताके लक्षणसे विपरीतता दृष्टिगत होनेपर श्रीमहाप्रभुजीमें ही गुरू बुद्धि रखनी है, इस बातका तो श्लोक ३ मे परम् प्रमाणके रूपमे निर्देश हो ही चुका है.

स्वमार्गीय गुरुके प्रथम कर्तव्य का निरूपण:

श्लोक १३मे स्वमार्गीय गुरुके प्रथम कर्तव्य के रूपमे दैवी जीवोंको शरणागति के लिये प्रेरित करना बताया है.यहां भगवद् गीतामे भगवानने अर्जुनको १८ वे अध्यायमे जो फलरूप शरणागतिका उपदेश दिया था ,वही उद्धृत किया है. इस श्लोक पर न्यासादेश नामक संग्रह श्लोक है, जिसपर प्रभुचरण श्री विठ्ठलनाथजीने यहां निर्दिष्ट शरणागतिका पुष्टिमार्गीय फलके रूपमे निरूपण किया है . उसी अर्थमे यहां १३वे श्लोक मे भी फलमुख शरणागतिका लक्षण लेना चाहिये एसा प्रतित हो रहा है.

द्विज एवं द्विजेतर शिष्योंके स्वधर्मका निरूपण:

श्लोक १४-२३ इन श्लोकों मे स्वधर्म के रूप मे विशेषत: शास्त्रोक्त देहधर्म पालनका निरूपण हुआ है मनुष्य देहको धर्मपालन मे प्रथम साधन माना गया है क्योकि मनुष्य देह के अतिरिक्त किसी भी अन्य योनि मे धर्मका आचरण हो नहीं सकता.वैष्णव धर्मको भी निभाने के लिये इस देहकी आवश्यकता बताइ गई है. इसलिये इस दुर्लभ किन्तु सौभाग्यसे सुलभ मनुष्य देहको भक्तिके लिये शास्त्रोक्त धर्मोसे शुद्ध और पवित्र बनाना चाहिये. अपने शुद्ध एवं पवित्र तन-मन ही भगवद्भाव की वृद्धिमे सहायक होते है. यथासक्ति स्वधर्माचरण के अभावमे तन-मन मे आसुरावेश आनेकी पूर्ण संभावना रहती है. पुष्टिमार्गीय फलमे प्रतिबंधक धर्मोके अभावकी सिद्धि के लिये इन स्वधर्मोका निरूपण हुआ होनेसे, इनका साधनात्मक फल के रूपमे यहां निरूपण हुआ है. जिस तरह वृक्षके मूलमें जलका सिञ्चन करनेसे वृक्षके पत्र, शाखा आदि सभी का सिञ्चन हो जाता है, उसी तरह श्रीकृष्णकी सेवा से सभीकी पूजा हो जाती है. अत: भगवानकी प्रसन्नता एवं उनकी आज्ञाके पालनके रूपमें शास्त्रोक्त एवं लौकिक धर्मोका आचरण करना चाहिए अन्यथा

यह सभी कर्म निष्फल हो जाते है क्योंकि सभीमें पूज्य भगवान् श्रीकृष्ण ही है. उनको छोडकर स्वतन्त्ररूपसे कर्म करनेपर तो त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) ही सिद्ध होता है, और जिससे कर्मबन्धन ही प्राप्त होता है. जैसे वृक्षके मूलमें जल का सिञ्चन न करके वृक्षके पत्र, शाखा आदि का सिञ्चन करने पर वृक्षभी मुरझा जाता है और जल भी व्यर्थ जाता है. अत: यहां भगवत्सम्बन्ध होनेके कारण चतुर्विध पुरूषार्थकी फलरूपता सिद्ध होती है.

शरणमार्गमे दीक्षित जीवके कर्तव्यो का निरूपण श्लोक २४-३९ तक:

इन श्लोको मे शरणमार्गीय जीवके लिये करणीय शरणधर्मोका निरूपण हुआ है जेसे कि - सप्तविध भक्ति, वैष्णव व्रतोत्सव, पंचयज्ञ,तीर्थवास,वैष्णव तिलकादि बाह्याभ्यंतर चिन्होंको धारण करना इत्यादि . यह शरणधर्म जब जीवके भीतर शरणभाव सिद्ध होने के बाद लिंग तया प्रकट होते है तब वह फलरूप माने जायेंगे अन्यथा शरणभावको सिद्ध करने के साधन के रूपमे रहेंगे .

भक्तिमे प्रकट होते फलका निरूपण :

भक्ति: परेशानुभवो विरक्ति रन्यत्रचैष त्रिक एक काल: ।
प्रपद्यमानस्य यया श्नत:स्यु:तुष्टि: पुष्टि:क्षुदपायोनुघासम् ।। (भागवत ११-२-४२)

इस वचनके अनुसार शरणागति से भक्ति, परेशानुभव,और विरक्ति यह तीनो ही फलकी प्राप्ति बताई गई है. श्लोक ४०-४३ मे निर्देश हुआ है कि शरणागतिसे ,

१) सर्वात्मभाव
२) व्यापार निरोध और
३) नित्यलीलाप्रवेश

एसे फल प्राप्तिका निरूपण हुआ है.

१) सर्वात्मभाव : श्री महाप्रभुजीने वेणुगीत और भ्रमरगीत की सुबोधिनीमे सभी इन्द्रियोंसे होनेवाली भगवदनुभूति को सर्वात्मभाव कहा है. इसी भगवदनुभूतिको आपश्रीने यमुनाष्टक मे 'तनुनवत्व' , सेवाफलमे 'अलौकिक सामर्थ्य ',निरोधलक्षणमे ' फल निरोध ' और चतु:श्लोकी मे ' मोक्ष 'कहा है. भगवत्संयोगमे बाह्यालंबन से सभी इन्द्रियों द्वारा श्रीकृष्णका अनुभव होता है किन्तु विप्रयोग मे पूर्वानुभूत श्री कृष्णके स्वरूप एवं लीलाका स्मरण निरंतर चलता रहता होने से, विरहभावकी तीव्रता मे ,आसक्तिभ्रम न्याय से अन्त:स्थित भाव (रति) ही सभी रूप लेने लग जाता है. केवल अतिशय आसक्ति के कारण भक्तको सर्वत्र सभी वस्तुओं और व्यक्तियों मे अपने भजनीय स्वरूप की प्रेममयी भ्रान्ति होने लगती है . लौकिक प्रेमिका या प्रियतम किसी देशकाल मे उपस्थित या अनुपस्थित होते है . परमात्मा परंतु व्यापक और नित्य होने के कारण किसी भी देश या किसी भी काल मे अनुपस्थित नही रहते अत: यह भगवानकी अनुभूति भ्रान्ति नही कहलाती है.

२) व्यापार निरोध : सेवाफल ग्रन्थमे लौकिक भोग आधिदैविकी सेवा मे प्रतिबंधक बताये हैं. इसी बात का निर्देश यहां श्लोक ४१ मे हुआ है कि दोषदृष्टि रखकर सभी लौकिक भोग की वस्तुओ मे शम-दम-संतोष रखकर वैराग्य सिद्ध करना चाहिये . जिसमे इस तरह लौकिक आवेश

दूर हो जाता है उसीको भगवान श्री कृष्णमे प्रेम-आसक्ति-व्यसन एवं व्यसनोत्तर निरोध सिद्ध होता है. एसे भक्तमे प्रपंच विस्मृति पूर्वक भगवदासक्ति व्यापारित होती है इसीको व्यापार निरोध कहते है.

३) नित्यलीला प्रवेश : इस प्रकार जिस भक्तको निरोध सिद्ध हुआ है उसे भगवान की नित्यलीला मे प्रवेश प्राप्त होता है. अलौकिक सामर्थ्यरूप फलमे भक्त इस भूतल पर ही नित्यलीला मे भगवान की अनुभूति करपाये एसा सामर्थ्य प्राप्त करता है अन्यथा इसी देह से इस भूतलपर यह सामर्थ्य न प्राप्त होन पर भक्त वैकुंठादि दिव्य भगवद्धामो मे दिव्य देह प्राप्त कर पुन: नित्यलीला मे भगवद्भजन से जुड जाता है. सायुज्य फलतो विदेह मुक्ति की तरह भगवान श्री कृष्णमे लय प्राप्त करवाता है.

जिन भक्तोंको एसी फलावस्था प्राप्त हो जाती है वे कभी भी पाप कर्म या दोष नहीं करते है. कदाचित कभी कोई निंदित-निषिद्ध आचरण हो भी जाये , तब वे शीघ्र ही उसके अपराधसे छुट भी जाते है क्योंकि उनकी एकमात्र गति श्री हरि ही है . (श्लोक ४४) एसे भक्तका दिन-प्रहर-घडी-क्षणमात्र भी भगवद्भजन बिना नहीं रहता . जिनको एसी फलावस्था प्राप्त करनी है उन्हें गुरुजनों की एवं भक्तोंकी दैन्यपूर्वक सेवा करनी चाहिये और भागवतकथाका निरंतर सेवन करना चाहिए . इनके संग के बिना फलात्मक भक्ति प्रकट होनी दुर्लभ है . (श्लोक ४४-५०)

पुष्टिजीवके प्राकट्यका प्रयोजन ही फलका अनुभव करना (श्लोक ५२-५५) :

यह सृष्टि भगवान की लीला है. इस सृष्टिमे भगवानने पुष्टि जीवका प्राकट्य अपने भजनानन्दके अनुभवका दान करानेके लिये ही किया है अर्थात् पुष्टिजीव के प्राकट्यके मूलमें ही फल छिपा हुआ है. एसे जीव पर जब आत्मतया भावित भगवान कृपा करते है तब वह जीव लोक एवं वेद मे परिनिष्ठित अपनी मतिका त्याग कर देता है . यह उस जीवकी फलावस्था है अत: भगवानकी प्रसन्नताके लिये एसे अनुग्रहित जीवोंको इस पुष्टिमार्गके प्रति प्रेरित करना चाहिये .

भजनानन्दकी प्राप्ति के लिये आत्मसमर्पणादि साधनों का निरूपण (श्लोक ५६-६१) :

यहां यह बतलाया गया है कि श्रुति मे परमात्मा की प्राप्ति उनके द्वारा जीवके वरण बिना अन्य किसी भी साधन से जीवोंके लिये शक्य नहीं है . कृपा ही साधन है उस कृपा मे भगवानकी वरणरूप इच्छा के अलावा अन्य हेतु या कारण नहीं है . मात्र यह कृपा ही भक्तके हृदयसे परावृत्त होकर भक्ति बन जाती है. इसी भक्तिके रूपमे यहां आत्मसमर्पणादि साधनोका उपदेश दिया जा रहा है .इस समर्पणके प्रकारका उपदेश श्रीमद्भागवतके एकादशस्कंध मे दिया है, जिसे यहां भी उद्धृत किया है . समर्पण पूर्वक भजनके द्वारा भक्त दुस्तर माया को भी शीघ्रता से तैरकर कलिके सभी दोषोको दूर कर देता है एवं उसे श्रेष्ठ भगवद्पदकी प्राप्ति होती है. इसतरह भक्तको इस श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति करवाने मे स्वयं फलरूप भगवानकी कृपा ही साधन बन जाती है. अत: यहां साधन और फलकी एकरूपता सिद्ध हो रही है .

भक्तिमार्गीय फलमें प्रतिबन्धक वस्तु /आचरणका त्याग (श्लोक ६२-७३) :

इस भक्तिमार्गमे भगवत्कृपाको ही साधनतया प्रतिपादित करदेने के बावजूद श्री महाप्रभुजी

१) यथाशक्ति शास्त्रोक्त स्वधर्मका अनुष्ठान करना
२) शास्त्र विरूद्ध कर्मसे सर्वथा दूर रहना एवं
३) एकादश इन्द्रियरूप अश्वोंकी लगाम खींचे रखनेका उपदेश दे रहे है.(स.नि.२३८)

इन तीनोंका त्याग कभीभी नही करना चाहिये एसी आपश्री की आज्ञा है अन्यथा वे पुष्टिमार्गीय फलमे प्रतिबन्धक होते हैं. सर्वनिर्णय ग्रन्थमे (श्लोक २१६-२१७) ही आपश्री ने आज्ञा की है कि इस पुष्टिमार्गमें भी वेदनिन्दा तथा अधर्माचरण होनेपर नरकमे तो यद्यपि पतन नहीं होगा किन्तु हीन योनिमे जन्मतो मिलेगा. वहां संसारमे यदि अतिशय अभिनिवेश न होतो पूर्वजन्मके भक्ति संस्कार के कारण पुन: अनेक जन्मके अन्तरायके बाद जीव इस संसारसे मुक्त होता है क्योंकि श्री कृष्णके इस मार्गमे जीवकी स्थिति होने से जीवका उद्धार तो होता ही है. इसीलिये भक्तिमार्गमे निषिद्ध आचरण व व्यवहारका निषेध यहां किया है.

स्त्री शूद्रोंका पुष्टिमार्गीय फल की प्राप्तिमे स्थान (श्लोक ७४-८५):

स्त्रीशूद्रोंके लिये स्वमार्गीय भजनका प्रकार एवं उनके स्वधर्मका निरूपण यहां हुआ है . एसे स्त्रीशूद्रोंका भी पुष्टिमार्गमें अंगीकार है क्योंकि जीवमात्र प्रभुके सहज दास है और प्रभुभक्तिमे सभी जीवोंका अधिकार समानरूपसे भागवतमे बताया है. शास्त्रमें स्त्रीशूद्रोंका सहज धर्म परिचर्या/ सेवा बतलाई है और वही परिचर्या/सेवाधर्म पुष्टिमार्गमे मुख्य सिद्धान्त तया प्रतिपादित हुआ है . अत: स्त्रीशूद्रोंको इस मार्गमे श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति अन्य की तुलना मे सहज और सुगम हो जाती है.

पुष्टिमार्गमे भगवानके सेव्यस्वरूपकी फलात्मकता (श्लोक ८६-९०) :

अवतारकालमे तो प्रभुके स्वरूपका प्राकट्य स्वेच्छासेही होता है किन्तु अनवतारकालमे स्वरूप प्रकट न होने से स्वरूपकृत निरोध संभव है कि नही ? इस प्रश्नका समाधान श्री महाप्रभुजीने सर्वनिर्णय निबन्धमे (कारिका २२८-२२९) भगवानके भक्तिमार्गीय आविर्भावकी प्रक्रिया बताने के रूपमे दिया है. भगवानके भक्तिमार्गीय आविर्भावकी प्रक्रिया इसतरह बताई है :

१) साकार ब्रह्मवादके सिद्धांत अनुसार वस्तुमात्र ब्रह्मात्मक होनेके कारण भगवानकी मूर्ति भी भगवदात्मक होने मे किसीप्रकारकी शंका का स्थान नही है.

२) भक्तिका बीज भगवानकी कृपा ही होता है अत: भक्तके हृदयमे किसी विशेष भगवानकी मूर्तिके प्रति लगाव पैदा होता हो तो,उसका बीज उस मूर्तिरूप द्वारा भक्तोद्धारके भगवानके संकल्पमे निहित होता है .

३) भक्तके भक्तिमार्गीय भावनामय संकल्पके कारण भी भक्तके सेव्य स्वरूपको ' भगवानके एक विशेष व्यक्तिगत अवतार ' के रूपमे मान्य किया जााता है .

अत: भगवन्मूर्तिको मायिक अथवा चित्तको एकाग्र बनानेका एक उपकरण मानने की रीति वल्लभ संप्रदायसे विपरीत है क्योंकि ब्रह्म व्यापक और साकार दोनो ही है . ' ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम् ' इस गीता वचनके अनुसार मूर्तिमे साक्षाद् व्रजाधिपकी सच्चे हृदयसे भावना करनेपर सचमुच ही व्रजाधिपका उसरूपमे प्राकट्य होता है . भगवानके इस कृपामय संकल्प और भक्तके भावनामय संकल्पके बलसे प्रकट हरिमूर्तिका ध्यान अपने

अंत:करणमे निरन्तर बनाये रखनेसे एवं अपनी सभी इन्द्रियोंको भी इन स्वरूपकी सेवामे विनियोग करानेसे , इस अनवतारकालमें भी भक्तका भगवानके स्वरूपमे निरोध शक्य बनजाता है .

इसी बातका निर्देश श्रीगोपीनाथ प्रभुचरणने इन श्लोको मे किया है कि जिस स्वरूपमे सेवकका लगाव हो उस स्वरूपको सेवामे पधराना चाहिये . परब्रह्म श्रीकृष्ण सर्वव्यापक , साकार एवं अप्राकृत होनेसे पुष्टिमार्गमे श्री कृष्णकी मूर्तिमे प्राणप्रतिष्ठा आदिकी आवश्यकता नहीं है किन्तु भाव प्रतिष्ठारूप संस्कार की (स्वरूप पुष्ट कराना) आवश्यकता है. जिससे उस मूर्तिके भौतिकता की शुद्धि होती है और गुरुकी आज्ञाभी प्राप्त हो जाती है . पुष्टिमार्गमे भावकी ही प्रधानता होनेसे भगवन्मूर्तिकी सेवा साक्षात् फलरूप भगवानके रूपमे ही होती है , फिर चाहे वह भगवन्मूर्ति गुरु के द्वारा पधराई गइ हो , स्वयं को कहीं से प्राप्त हुई हो , अन्य किसी भगवदीय ने जिनकी सेवा की हो अथवा यदि भाव बाधित नहो तो खंडित भी भई हो .

फलात्मक नित्य सेवाका स्वरूप एवं उसकी विधिका निरूपण (श्लोक ९१-१२७):

सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थमे श्री महाप्रभुजीने कृष्णसेवाको पुष्टिमार्गीय जीवोंका सनातन कर्तव्य बताया है. भागवत के द्वितीय स्कंधमे भी यही बात समझाई है कि भगवान ब्रह्माजीने तीन बार वेद का अनुशीलन कर यहि निश्चय किया की सर्वात्मा भगवान श्री कृष्णकी प्रेम पूर्वक सेवा करना यही समग्र वेदका अभिप्राय है . यहां श्रीविठ्ठलनाथजी प्रभुचरण आज्ञा कर रहे है कि श्रीकृष्ण स्वयं फलात्मक है अत: इनकी सेवा भी स्वयंमे फलरूप है . इसलिये कृष्णसेवासे अन्य फलकी इच्छा नही रखनी चाहिये . सेवा स्वतन्त्र पुरुषार्थरूप होनेके कारण स्वत: फलरूप है . पुष्टिमार्गमे सेवा साधन भी है और फलभी है . इसीकारण यहां श्रीगोपीनाथ प्रभुचरणने इस फलात्मक कृष्णसेवाके प्रकारको भक्तकी एक जीवन प्रणालीके रूपमे विस्तारसे समझाया है कि किस तरह भक्त अपने स्वधर्मको निभाते हुअे अपने ही घरमे , स्वयं के तन-मन-धनसे , अपने अनुकूल परिवारजनो के साथ कृष्णसेवाका प्रकार निभाये एवं सेवाके अनवसरमे कृष्णकथाका प्रकारभी निभाये और भक्तकी पूरी दिनचर्या एवं रात्रिका शयन भी कृष्णसेवा-कृष्णकथामय हो जाये . यही तो चतु:श्लोकी मे बताया हुआ भक्तिमार्गीय मोक्ष है कि

''अत: सर्वात्मना शश्वद गाकुलेश्वर पादयो: ।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यं इति मे मति: ।। ''

अन्तमे श्रीगोपीनाथप्रभुचरण कृष्णसेवा-कथामय जीवन निर्वाह करनेवाले भक्त कृतकृत्य होकर भगवान श्रीकृष्णको प्राप्त होते है एसा फल दिखा रहे हैं , इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे भक्तको इष्ट सिद्धि नही होती है एसा भी सूचित कर रहे है.